इकाई-3

दर्शन-साहित्य

'दर्शन' शब्द की निष्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई है। 'दृश्' का अर्थ है देखना। 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' के अनुसार, जिसके द्वारा देखा जाए वही दर्शन है। सामान्यतः नेत्र ही देखने के लिए स्थूल साधन हैं और नेत्रों द्वारा होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान चाक्षुष-प्रत्यक्ष (Eye-Perception) कहलाता है। पर उक्त साधन स्थूल दर्शनों का है। मूलतः दर्शन का सम्बन्ध अन्तर्दृष्टि से होता है। यहाँ दर्शन से अभिप्राय आत्मदर्शन से है। 'छान्दोग्योपनिषद्' में 'दृश्' शब्द का प्रयोग 'आत्मदर्शन' के लिए भी हुआ है।

वेद और उपनिषद् श्रुति कहलाते हैं। सभी हिन्दु-धर्मावलम्बी इनके प्रामाण्य (Authority) को मानते हैं। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त-ये छह आस्तिक दर्शन श्रुति से गौण तर्क को श्रुति और उसके प्रामाण्य को तर्क के साथ स्थान देते हैं। लेकिन चार्वाक, बौद्ध और जैन-दर्शन, जो कि नास्तिक दर्शन कहलाते हैं, श्रुति और उसके प्रामाण्य को नहीं मानते। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ऋषियों को सत्य का साक्षात्कार (Intuition) हुआ था और वह वेद और उपनिषदों में लिपिबद्ध है।

मीमांसा के संदर्भ में भारतीय दर्शन

'मीमांसा' दर्शनशास्त्र का विषय है। मीमांसा' शब्द का अर्थ है-गहन विचार, पूछताछ, अनुसन्धान, परीक्षण इत्यादि। यह पक्ष-प्रतिपक्ष को लेकर वेद-वाक्यों के निर्णीत अर्थ पर विचार करती है। दर्शनशास्त्र के अध्ययन की कई पद्धतियाँ/शाखाएँ हैं, जिनमें प्रमाणमीमांसा, तत्त्वमीमांसा और आचारमीमांसा प्रमुख हैं।

प्रमाणमीमांसा

दर्शनशास्त्र की मीमांसाओं में **'प्रमाणमीमांसा'** ज्ञान की प्राप्ति के साधन हैं। इनके द्वारा ही ज्ञान-प्राप्ति किया जाता है। **सम्यगर्थ निर्णयः प्रमाणम्। अर्थोपलब्धि-हेतुः प्रमाणम्। सम्यगनुभव साधनं प्रमाणम्।** इत्यादि अनेक परिभाषाओं से युक्त प्रमाण शब्द का अर्थ है-यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का उपाय।

प्रमाणं द्विधा। प्रत्यक्षं परोक्षं च। अर्थात् प्रमाण दो प्रकार के हैं-प्रत्यक्ष और परोक्ष। इन दोनों में श्रेष्ठ प्रत्यक्ष प्रमाण है-**सकलप्रमाण ज्येष्ठं प्रत्यक्षम्।** कुछ दार्शनिकों ने अनुमान, उपमान और शब्द को भी प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। नैयायिक केवल चार प्रमाण-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द को स्वीकार करते हैं। सांख्य केवल प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द को प्रमाण के रूप में स्वीकार करता है। वेदान्ती और मीमांसक प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द के अतिरिक्त अनुपलब्धि और अर्थापत्ति को भी प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं। जैन-दर्शन तीन प्रमाणों को स्वीकार करता है-1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान तथा 3. शब्द।

चार्वाक-दर्शन प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण मानता है। क्योंकि अनु प्रमाण हमेशा सत्य नहीं होता है। मीमांसादर्शन में भाट्ट मत के अनु छह प्रमाण हैं-1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. शब्द, 4. उपमान, 5. अर्था और 6. अनुपलब्धि। इस दर्शन के अनुसार ज्ञान का प्रामाण्य उस ज्ञा की उत्पादक सामग्री में विद्यमान् रहता है, अर्थात् **प्रमाणं स्वत उत्पाद्यते।** अतः यह दर्शन स्वतः प्रामाण्यवाद कहलाता है।

तत्त्वमीमांसा

ज्ञान कैसा हो? यह ज्ञात होने के बाद ही ज्ञान की प्राप्ति की उपयुक्त विधि का प्रयोग वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त किया जाता है, जिसे **'तत्त्वमीमांसा'** कहा जाता है। 'तत्त्व' शब्द 'तन्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। इसका अर्थ होता है-मूल सिद्धान्त, परमतत्त्व, परमात्मा, मूलतत्त्व, प्रकृति इत्यादि। तत्त्व को सृष्टि का मूल घटक भी कहते हैं। पाशुपत-मतानुसाार पशु, पति एवं पाश तीन तत्त्व हैं। शाक्त- मतानुसार मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन-ये पाँच तत्त्व हैं। शैव-मतानुसार कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति एवं गुण नामक सात तत्त्व हैं। चार्वाक के अनुसार, पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु चार तत्त्व हैं। सांख्यदर्शन 25 तत्त्वों (पंचमहाभूत, पंचगुण, पंचकर्मेन्द्रिय, पंचज्ञानेन्द्रिय, मूलप्रकृति, महत्, बुद्धि, अहंकार एवं पुरुष) तथा 26वाँ तत्त्व ईश्वर को स्वीकार करता है।

मीमांसा-दर्शन में पदार्थ या प्रमेय पर पूर्णतया चर्चा की गई है। अद्वैत वेदान्त में एक मात्र तत्त्व है-ब्रह्म-तत्त्व। रामानुजाचार्य ने द्रव्य और अद्रव्य नामक दो तत्त्वों को स्वीकार किया है। प्रभाकर के मतानुसार आठ पदार्थ हैं-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति, संख्या और सादृश्य। भाट्ट के मत में छह पदार्थ हैं-द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, शक्ति और अभाव। यह दर्शन वेद-वाक्यों का अधिक महत्त्व देते हुए स्वर्ग, नरक, आत्मा और वैदिक यज्ञ के देवताओं का अस्तित्व स्वीकार करता है।

जैन-दर्शन संसार को एक दृष्टि से नित्य तथा दूसरी दृष्टि से अनित्य स्वीकार करते हैं। इसके अनुसार, द्रव्य वह है जिसमें गुण और पर्याय हों। यह दर्शन द्रव्य को सत्य मानते हुए उत्पत्ति, व्यय और नित्यता-ये ही सत्ता का लक्षण स्वीकार करता है। जैन-दर्शन के अनुसार, जीव के दो भेद हैं-बद्ध और मुक्त। बद्ध जीव वे हें, जो अभी बन्धन में हैं। मुक्त जीव वे हैं, जो मोक्ष प्राप्त कर बन्धन से मुक्त हो चुके हैं। बद्ध जीव भी दो प्रकार के होते हैं-स्थावर (गतिहीन) और त्रस (जंगम)। जड़-तत्त्व का सबसे छोटा भाग अणु है।

शून्यवादी बौद्ध मतानुसार, एकमेव तत्त्व शून्य है। बुद्ध के अनुसार, सभी वस्तुओं की उत्पत्ति कारणानुसार हुई है। ये सभी वस्तुएँ सब तरह से अनित्य हैं। बौद्ध -र्शन आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करता है। इसकी

मान्यता है कि आत्मा की नित्यता को समझने के कारण आसक्ति बढ़ती है और दुःख भी उत्पन्न होता है।

'न्याय-सूत्र' में प्रमेय (वह विषय, जो जाना जाता है) के 12 भेद किए गए हैं-आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रत्येभाव, फल, दुःख और अपवर्ग। यह दर्शन भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न आत्मा को मानता है। इसके अनुसार, आत्मा की न तो उत्पत्ति होती है और न ही नाश। अतः यह चैतन्य तथा नित्य है। जड़ जगत् भूतों से अर्थात् क्षिति, जल, पावक और समीर से बना है। ईश्वर संसार के स्रष्टा, पालक और संहारक हैं। वह जीवों के कर्मानुसार जगत् की सृष्टि और जीवों के सुख-दुःख का विधान करते हैं। यह दर्शन पाप, पुण्य और मोक्ष को स्वीकार करता है तथा ईश्वर-द्वारा व्यक्त होने के कारण भेद को प्रामाणिक मानता है।

वैशेषिक लोग जगत् की वस्तुओं के लिए पदार्थ शब्द का व्यवहार करता है। कोई भी वस्तु, जिसे नाम से अभिहित किया जा सके और जिसे ज्ञान का विषय बनाया जा सके 'पदार्थ' कहलाती है। ये दो प्रकार के हैं-1. भाव पदार्थ, जैसे-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय, 2. अभाव पक्ष, जैसे रात्रि में सूर्य का न होना।

वैशेषिक मतानुसार, संसार के सभी कार्य-द्रव्य चार प्रकार के परमाणुओं-(पृथ्वी, जल, तेज और वायु) से मिलकर बनते हैं। इसीलिए वैशेषिक मत को परमाणुवाद भी कहते हैं। इस मत के अनुसार, परमाणुओं की गति का सूत्रधार ईश्वर है। वही सृष्टि और संहार के कर्ता (महेश्वर) हैं। यह सृष्टि के प्रलय की स्थिति को भी स्वीकार करता है। इसके अनुसार शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, मन तथा अहंकार से युक्त जीवात्मा अपने बुद्धि, ज्ञान और कर्म के अनुसार सुख या दुःख का भोग करते हैं। प्रलय के पश्चात् केवल चार भूतों-पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु तथा पाँच नित्य द्रव्य (दिक्, काल, आकाश, मन एवं आत्मा) और जीवात्माओं के धर्माधर्मजन्य भावना या संस्कार मात्र बच जाते हैं, जिनको लेकर फिर अगली सृष्टि बनती है।

योग-दर्शन के अनुसार, मनुष्य विवेक (शरीर, मन, इन्द्रिय इत्यादि से आत्मा भिन्न है, ऐसा ज्ञान) से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यह दर्शन मुख्यतया व्यावहारिक पहलू पर जोर देते हुए आत्मशुद्धि और समाधि का अभ्यास करने के विषय में बतलाता है। इसके अनुसार, जीव एक स्वतन्त्र पुरुष है, जो स्थूल शरीर और विशेषतः सूक्ष्म शरीर (इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार) से सम्बद्ध है। यह स्वभावतः शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। चित स्वभावतः जड़ है, परन्तु आत्मा के निकटतम सम्पर्क में रहने के कारण वह आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हो उठता है। निर्मल होने के कारण उस पर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जिससे उसमें चैतन्य का आभास आ जाता है।

आचारमीमांसा

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्यक् विवेक के साथ जीवन में संतुलित कार्य करना ही आचार है। प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति के मन में जीवन और संसार के रहस्य, जन्म-मृत्य के कारण, पुनर्जन्म अथवा मोक्ष, आत्मा और परमात्मा का रहस्य इत्यादि जानने की प्रवृत्ति होती है।

भारतीय चिंतकों ने पुरुषार्थ को जीवन-मूल्यों का पर्याय माना है। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही व्यक्ति के लिए मोक्ष या मुक्ति का कारक है, लगभग सभी दर्शनों की ऐसी मान्यता है, भले प्राप्ति का साधन जो भी बताए गए हों।

सांख्य-दर्शन के अनुसार, जब व्यक्ति सभी दुःखों से सर्वदा के लिए छुटकारा प्राप्त कर लेता है तो यही मुक्ति कहलाती है। सामान्यतः दुःख के तीन प्रकार है-1. आध्यात्मिक, 2. आधिभौतिक एवं आधिदैविक। सांख्य मुक्ति दो तरह की मानता है-1. जीवन-मुक्ति और 2. विदेह-मुक्ति।

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार, धर्म वही है, जिसके द्वारा तत्त्व-ज्ञान और मुक्ति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

'न्याय-दर्शन' में प्राणी इस दुःख बहुल संसार से सदा के लिए मुक्ति पा ले इस आचार की मीमांसा की गई है। न्याय-दर्शन दुःख से अत्यन्त विमोक्ष को अपवर्ग कहता है। मोक्ष के मार्ग के विषय में इस दर्शन का मानना है कि मोक्ष-प्राप्ति-हेतु सर्वप्रथम धर्म- ग्रन्थों के आत्म विषयक उपदेशों का श्रवण, मनन एवं ध्यान करना चाहिए। इससे मनुष्य आत्मा को शरीर से भिन्न समझने लगता है। इस तरह मिथ्या ज्ञान का अन्त हो जाने पर संचित कर्मों का फल भोग लेने पर फिर से मनुष्य जन्म-ग्रहण के चक्र में नहीं पड़ता, तभी मनुष्य को मोक्ष या अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

चार्वाक-दर्शन केवल अर्थ और काम पुरुषार्थ को ही जीवन का लक्ष्य मानता है। यह ईश्वर की असिद्धि की तरह स्वर्ग की कल्पना को भी मिथ्या घोषित करता है।

जैन-दर्शन के अनुसार पूर्व-जन्म के विचार, वचन तथा कर्मों के कारण जीवों को जन्म-ग्रहण करने के दुःख को भोगना पड़ता है। जन्म-ग्रहण की यही प्रक्रिया बन्धन कहलाता है। यह दर्शन जन्म-ग्रहण के बन्धन से छुटकारा पाकर मोक्ष की प्राप्ति हेतु जीव के अज्ञान का नाश और ज्ञान की प्राप्ति को आवश्यक समझता है। इसीलिए यह दर्शन सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र इन त्रिरत्न पर बल देता है।

बुद्ध ने आत्मा, शरीर, पुनर्जन्म इत्यादि विषयों पर ज्यादा ध्यान न देकर दुःख, दुःख के कारण और दुःख-निरोध जैसे विषयों को अधिक महत्त्वपूर्ण माना। बुद्ध के अनुसार विषयों से अनासक्ति से तृष्णाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शान्ति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्वाण-प्राप्ति सम्भव है।

बौद्ध-दर्शन में शील, समाधि तथा प्रज्ञा को निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

योग-दर्शन में आचार के लिए अष्टांग साधनों का वर्णन किया गया है। ये अष्टांग साधन हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

मीमांसा-दर्शन के अनुसार वैदिक धर्म और वेद विहित कर्मों का पालन करना और उनके द्वारा बताए गए निषिद्ध कर्मों का त्याग करना धर्म कहलाता है। इस दर्शन में वेद-प्रतिपादित धर्म को स्वीकार करते हुए उसे तीन भागों में विभदत किया गया है-1. कर्तव्य, 2. काम्य और 3. प्रतिषिद्ध। इसके अतिरिक्त स्मृति-ग्रन्थों में वर्णित प्रायश्चित्त कर्मों के सेवन का भी विधान किया गया है। इसमें स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ को साधन माना गया है-**स्वर्ग कामो यजते**। इस दर्शन का प्रधान लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है।

भारतीय दर्शन : एक परिचय

चार्वाक-दर्शन

यह एक भौतिकवादी दर्शन है। 'चार्वाक' शब्द कैसे चल पड़ा, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। चार्वाक 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' के सिद्धान्त को मानते हैं। 'चार्वाक' शब्द की व्युत्पत्ति

'चर्व्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है चबाना। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'चारु-वाक्' (प्रिय वचन) से करते हैं। 'खाओ-पिओ, मौज उड़ाओ' नामक सिद्धान्त का प्रचार करने के कारण चार्वाकों का सिद्धान्त जनसाधारण को बहुत पसन्द था। कुछ अन्य लोगों का मत है कि चार्वाक उस ऋषि का नाम था, जिसने सबसे पहले भौतिकवाद का प्रचार किया था। इसके अलावा 'चार्वाक' शब्द का कोई और अर्थ नहीं है। चार्वाक ऋषि के अनुयायी भी चार्वाक कहलाने लगे।

बृहस्पति को चार्वाक-दर्शन का प्रणेता माना जाता है। 'महाभारत' और 'पद्मपुराण' में यह उल्लेख है कि लोकायत-मत का प्रचार बृहस्पति के द्वारा हुआ। इस दर्शन के लगभग बारह सूत्र बृहस्पतिकृत माने जाते हैं। इन सूत्रों को कमलशील, जयन्त, प्रभाचन्द्र और गुणरत्न ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। कोई इन सूत्रों का कर्ता चार्वाक को, कोई लोकायत को और कोई (गुणरत्न) बृहस्पति को मानता है। जयन्त ने चार्वाकों के दो सम्प्रदाय बनाए हैं–धूत चार्वाक और सुशिक्षित चार्वाक। कमलशील ने बृहस्पति के सूत्रों की दो विरोधी टीकाएँ बताई हैं, जो कि जयन्त के द्वारा उल्लिखित दो सम्प्रदायों की प्रतीत होती हैं। यह भी कहा जाता है कि बृहस्पति ने एक श्लोक-बद्ध ग्रन्थ भी लिखा था और उसके कुछ श्लोकों को माधवाचार्य ने 'सर्वदर्शनसंग्रह' के 'चार्वाक-दर्शन' में उद्धृत किया है।

चार्वाक का प्राचीन नाम लोकायत भी है और इससे ऐसा आभास होता है कि यह मत सम्पूर्ण संसार में व्याप्त रहा होगा, पर इसका अर्थ यह भी होता है कि यह मत देश-काल में व्याप्त जगत् की सत्ता स्वीकार करता है, लेकिन इस संसार से परे आत्मा, परमात्मा या स्वर्ग-नरक को नहीं मानता, है अतः इसका यह नाम पड़ा। डॉ. राधाकृष्णन ने चार्वाक-दर्शन को उतना ही प्राचीन माना है, जितना स्वयं दर्शनशास्त्र और यह बौद्ध मत के पूर्व भी पाया जाता है–

Materialism is as old philosophy, and the theory is to be met with in the pre-Buddhistic period also.

सामान्यतः चार्वाक-दर्शन प्रत्यक्षवादी है। इसके अनुसार, जो वस्तु प्रत्यक्ष नहीं, उसका कोई अस्तित्व भी नहीं तथा इस जगत् में न तो कोई परमात्मा है और न स्वर्ग या अन्य लोक।

जैन-दर्शन

जैन-परम्परा के अनुसार, ऋषभदेव जैन-धर्म के प्रथम प्रवर्तक और वर्द्धमान अन्तिम तीर्थंकर थे। इस प्रकार ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान तक चौबीस तीर्थंकरों ने जैन-धर्म का उपदेश दिया था।

वर्द्धमान महावीर गौतम बुद्ध के समकालीन थे। उनका जन्म 599 ई.पू. में और मृत्यु 527 ई.पू. में हुई। जैन-धर्म-ग्रन्थ उनके उपदेशों के आधार पर लिखे गए। वर्द्धमान को 'जिन' अर्थात् आयात्मिक विजय करनेवाला और 'महावीर' भी कहा जाता है। वर्द्धमान से पहले तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ माने जाते हैं, जिनकी मृत्यु वर्द्धमान से 250 वर्ष पूर्व मानी जाती है। वर्द्धमान ने पार्श्वनाथ के मत का सुधार किया।

जैन-दर्शन में जीव (Soul) और अजीव (Non-Soul)–इन दो तत्त्वों की सत्ता मानी गई है। जीव अनन्त हैं, पृथ्वी में जीव हैं, जल में जीव हैं, आग में जीव हैं, वायु में जीव हैं, वनस्पतियों में जीव हैं, पशुओं में जीव हैं, मनुष्यों में जीव हैं और देवताओं में जीव हैं। जीव एक नित्य द्रव्य है। अजीव या पुद्गल से इसकी उत्पत्ति नहीं होती। यह एक अभौतिक पदार्थ है। यह एक शरीर से दूसरे में जन्म लेता है। अजीव-तत्त्व में पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल शामिल हैं। पुद्गल अणु या अणु-स्कन्ध के रूप में रहता है। अणु सब एक प्रकार के हैं। कर्म एक प्रकार का सूक्ष्म पुद्गल है, जो जीव से चिपककर उसके बन्ध का कारण बनता है। पुद्गल एक स्वतन्त्र तत्त्व है, जीव से उत्पन्न नहीं है। जीव और पुद्गल एक-दूसरे से बिलकुल पृथक् हैं।

जैन-दर्शन द्वैतवादी है। जैन लोग ईश्वर को नहीं मानते, इसलिए निरीश्वरवादी हैं। जगत् स्वयंभू और शाश्वत है। जगत् की वस्तुएँ अनेकान्त हैं और अनन्तधर्मक हैं। सत्ता को अनेक दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है। जैन-दर्शन में दृष्टिकोण को 'नय' कहा गया है। जैन-दर्शन अन्य तन्त्रों के दृष्टिकोणों को अपूर्ण और अपने दृष्टिकोण को पूर्ण मानता है। वास्तविक तत्त्व-ज्ञान जैन-दर्शन ही देता है। जैन-मत के अनुसार, प्रत्येक मत सापेक्ष रूप से ही सत्य है, कोई निरपेक्ष रूप से सत्य नहीं है। यह मत 'स्याद्वाद' कहलाता है। जैन-दर्शन में विधान के सात तरीके बताए गए हैं, जिन्हें 'सप्तभंगिन्याय' कहा गया है। जैनों का धर्म की नीति में अहिंसा और वैराग्य पर जोर दिया गया है। जैनों का धर्म तीर्थंकरों की पूजा और अपने प्रयत्न के बल पर मुक्ति प्राप्त करना।

वस्तुतः जैन-दर्शन में उच्च-कोटि के प्रमाण शास्त्र और विशुद्ध व तपोमय जीवन विन्यास की प्रतिस्थापना की गई है। इसमें मोक्ष के निम्न तीन साधन माने गए हैं, जिन्हें रत्नत्रय भी कहा जाता है–

1. सम्यक् दर्शन–श्रद्धा।
2. सम्यक् ज्ञान–जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा व मोक्ष कामक सात पदार्थों का समुचित ज्ञान।
3. सम्यक् चरित्र–इसके लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह नामक पाँचों व्रतों का पालन।

जैन-धर्म की आचार मीमांसा भी अत्यन्त उपादेय है और प्रकारान्तर से इसमें जीव, पुद्गल, आकाश, काल, धर्म व अधर्म नामक द्रव्यों को स्वीकार किया गया है। एक देश-व्यापी द्रव्य 'काल' और बहुप्रदेश-व्यापी द्रव्य 'अस्तिकाय' कहे गए हैं। सत्ता धारण करने के कारण उन्हें अस्ति और शरीर के सदृश्य विस्तार से समन्वित होने के कारण 'काय' कहा गया है।

जैनियों की दार्शनिक दृष्टि अनेकतावादी कही जाती है अर्थात् वह सत्य को जानने के लिए अनेक दृष्टियों का होना स्वीकार करते हैं और उन सबसे देखने पर ही वह सत्य का वास्तविक स्वरूप ज्ञात होना सम्भव मानते हैं। जैन-दर्शन में सात नय भी स्वीकार किए गए हैं, जिन्हें सप्तभंगी न्याय भाव या स्याद्वाद्व भी कहा जाता है, और अन्ततोगत्वा मोक्ष उसका प्रधान लक्ष्य है।

बौद्ध-दर्शन

वस्तुतः ईसा से लगभग 500 वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध के द्वारा जिस नए और मौलिक चिन्तन की नींच पड़ी, उसी को आगे चलकर बौद्ध-धर्म या दर्शन का नाम दिया गया। वास्तव में बुद्ध की संकलित अनुभूतियाँ और जीवन्त सत्य ही इस दर्शन की आधारशिला है। महात्मा बुद्ध के सारे चिन्तन का मूल उनके निजी दुःख चैतन्य भाव और उसके निदान के लिए की गई तपस्या के फलस्वरूप उपलब्ध अनुभव है। जनसाधारण के सारे दुःख और जीवन की नष्टप्राय कल्पना ने बुद्ध को अभिभूत कर दिया था। उनका चिन्तन अथवा उनके अनुभव मात्र उनको व्यक्तिगत संवेदनाओं की उपज नहीं है, बल्कि उनमें सम्पूर्ण लोक-जीवन की गहरी प्रेरणा है। इसीलिए उनके उपदेश लोकजीवन की अनुभूतियों का परिचय देते हैं। बुद्ध के व्यावहारिक जीवन की घटनाएँ इस लौकिक जीवन के लिए सदा और सर्वदा उपदेशस्वरूप हैं।

बुद्ध ने कर्म करने पर विशेष बल दिया है। क्योंकि व्यावहारिक जीवन का सम्बन्ध सीधे कर्म से है और निर्वाण कर्म का परिणाम है। बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित होने के नाते उनके उपदेश अधिक प्रभावशाली हुए। वे जो कुछ कर चुके थे, वही लोगों से करने के लिए कहते थे। उनकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं था।

बौद्ध-दर्शन के मूलतः चार सम्प्रदाय हैं–वैभाषिक, सौवातिक, योगाचार व माध्यमिक। सत्ता के सिद्धान्त के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् मत रखने के कारण ही उक्त चार सम्प्रदायों का जन्म हुआ। वैभाषिक लोगों के अनुसार, जगत् के समस्त पदार्थ–चाहे वे बाहरी जगत् से सम्बन्ध रखते हों या भीतरी जगत् से सम्बन्धित हों–सब सच्चे हैं और इस बात का पता प्रत्यक्ष के द्वारा लगता है। इसका दूसरा नाम है–'सर्वास्तिवाद' है। सौवातिक मत भी बाहरी पदार्थों को सत्य नहीं मानता है। परन्तु प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बल्कि अनुमान के द्वारा। योगाचार का दूसरा नाम विज्ञानवाद है, क्योंकि वह विज्ञान अथवा चित्त को ही एकमात्र सत्य मानता है। माध्यमिक का दूसरा नाम 'शून्यवाद' है, क्योंकि इस मत में जगत् के समस्त पदार्थ शून्य रूप हैं।

बुद्ध के अनुसार, सब चीजें अनित्य हैं। नित्य आत्मा की सत्ता नहीं है। सबकुछ दुःखमय है। आत्मा मन और देह का समुदाय मात्र है और अनित्य है। जगत् का रचयिता कोई ब्रह्म या ईश्वर नहीं है। जगत् स्वयंभू है, निःसत्त्व है, निरात्म है, अनादि है। कोई भी नित्य द्रव्य नहीं है। केवल अनित्य धर्मों की ही सत्ता है, जो कि प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम के अधीन हैं। धर्मों की उत्पत्ति उनके कारणों से होती है। प्रतीत्यसमुत्पाद का नियम नैतिक नियम का सहायक है। नैतिक नियम कर्म का नियम है। कर्म का नियम धर्म का नियम है। सबकुछ अनित्य है, क्षणिक है, उत्पत्ति-विनाशशील है। परिवर्तन ही तत्त्व है। जगत् परिवर्तनशील है। आत्मा एक अनित्य सन्तान है, इसमें कोई भी चीज नित्य नहीं है। आत्मा क्षणिक विज्ञानों की एक सन्तान है और एक शरीर के पश्चात् दूसरे शरीर में जाता है। जीवन दुःखमय है। दुःख का कारण तृष्णा है। तृष्णा का मूल अविद्या है। अनित्य को नित्य समझना ही अविद्या है। यह आत्मा का मोह है, जो कि जन्म-मृत्यु के चक्र का मूल है। दार्शनिक ज्ञान से अविद्या का नाश नहीं हो सकता है।

बुद्ध की दृष्टि दर्शन-विरोधी है। उन्होंने दस प्रश्नों को ऐसा बताया है, जिनका उत्तर देना असम्भव है, जिनका दार्शनिक वाद-विवाद से कोई समाधान नहीं हो सकता। दार्शनिक तर्क-वितर्क से आत्माभिमान और संशय पैदा होता है। बुद्ध ने नैतिक व्यवहार का मार्ग अपनाया है। उनके उपदेशों का लक्ष्य इस लोक में ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति और निर्वाण की प्राप्ति करना है। निर्वाण का अर्थ है, सब मनोविकारों का उपशम। निर्वाण पूर्ण शान्ति और समभाव का उदय है, बोधि है। निर्वाण का अष्टांग-मार्ग है, जिसमें शील, समाधि और प्रज्ञा आते हैं। प्रत्येक को स्वयं अपना निर्वाण करना है। निर्वाण ईश्वर की कृपा से नहीं मिल सकता। अहंकार को छोड़ देना चाहिए। अहंकार का नाश होने पर तृष्णा अर्थात् अस्तित्व की इच्छा नष्ट हो जाती है, जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है और निर्वाण का लाभ होता है।

बुद्ध ने अहिंसा के धर्म का उपदेश किया। अहिंसा आत्म-निर्भरता का धर्म है।

अहिंसा अर्थात् मनसा-वाचा-कर्मणा किसी को क्लेश न देना सदाचार की आधारशिला है। मैत्री अर्थात् सबके प्रति सद्भावना, करुणा यानी दुःखियों पर दया, मुदिता यानी पुण्य करनेवालों से प्रसन्न होना और उपेक्षा यानी पापियों के प्रति उदासीनता–इन गुणों को ग्रहण करना चाहिए।

बुद्ध ने आन्तरिक शुद्धता पर जोर दिया। उन्होंने बाहरी शुद्धता को पर्याप्त नहीं माना। पशु-बलि, कर्मकाण्ड और वैदिक विधि-निषेध की बुद्ध ने निन्दा की। जन्म पर आधारित वर्णभेद को बुद्ध ने गलत बताया। बुद्ध ने न भाव (Being) का, न अभाव (Non-being) का, बल्कि परिवर्तन (Becoming) का उपदेश किया। उन्होंने भोग और तपस्या दोनों का खण्डन किया और सम्यक् दृष्टि, सम्यक् वचन और सम्यक् आचार का मध्यम मार्ग (Middle path) अपनाया। बुद्ध ने अपने शिष्यों को गुरु या शास्त्रों पर निर्भर न रहने का, बल्कि स्वयं अपनी बुद्धि पर निर्भर रहने का उपदेश दिया। उन्होंने अपने शिष्यों को 'आत्मदीपो भव' का उपदेश देकर स्वयं प्रकाश खोजना और आत्म-निर्भर रहना सिखाया। उन्होंने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया और सदाचार पर जोर दिया। बुद्ध का सारा उपदेश चार आर्य सत्यों के अन्तर्गत आ जाता है–1. सब दुःखमय है; 2. दुःख का कारण (समुदाय) है; 3. दुःख का निरोध सम्भव है; और 4. दुःख-निरोध का एक मार्ग है।

जैन-धर्म की तरह बौद्ध-दर्शन भी निरीश्वरवादी (Atheism) है। पुनर्जन्म को मानते हुए भी वह शाश्वत आत्मा की सत्ता नहीं मानता। वह कर्म के नियम को मानता है। उसका लक्ष्य तृष्णा का नाश करके दुःखों का निरोध करना है। उसमें जीवन की बाह्य और आन्तरिक शुद्धता, हृदय की पवित्रता और आचार की पवित्रता पर बहुत जोर दिया गया है। वह कर्मकाण्ड, यज्ञ, तपस्या और संस्कारों को व्यर्थ मानता है। वह अहंकार और अविद्या का नाश करने का उपदेश देता है। पृथ्वी पर ही बोधि और निर्वाण की प्राप्ति उसका ध्येय है। निर्वाण प्रज्ञा, शान्ति और निष्काम-कर्म है। बौद्ध-धर्म स्वावलम्बन का धर्म है। मुक्ति को वह ईश्वर की कृपा नहीं मानता, बल्कि मनुष्य को अपने ही प्रयत्न से मुक्ति-लाभ करने की शिक्षा देता है।

न्याय-दर्शन

गोतम (200 ई.पू.) न्याय-दर्शन का प्रणेता थे। गोतम को गौतम और अक्षपाद भी कहते हैं। इसलिए न्याय का दूरा नाम अक्षपाद-दर्शन भी है। न्याय को तर्कशास्त्र, प्रमाणशास्त्र, वादविद्या और आन्वीक्षिकी भी कहा जाता है। न्याय प्रधानतया तर्क का विचार करता है। साथ ही वह भौतिक जगत् के 'व' रूप, जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का भी दार्शनिक विवेचन करता है। न्याय मोक्ष को, जो कि परम साध्य है, अपना लक्ष्य घोषित करता है।

गोतम ने 'न्यायसूत्र' की रचना की। वात्स्यायन (400 ई.) ने उसके ऊपर 'न्यायभाष्य' नामक प्रसिद्ध भाष्य लिखा। उद्योतकर (600 ई.) ने 'न्यायभाष्य' के ऊपर 'न्यायवार्तिक' लिखा। वाचस्पति (900 ई.) ने इसपर 'न्यायवार्तिकतात्पर्य-टीका' लिखी। उदयन (1000 ई.) ने वाचस्पति की टीका पर 'तात्पर्य-परिशुद्धि' नामक टीका लिखी। जयन्त (1000 ई.) ने 'न्यायसूत्र' पर 'न्यायमंजरी' नामक एक स्वतन्त्र टीका लिखी। ये प्राचीन न्याय-दर्शन के ग्रन्थ हैं।

गंगेश (1200 ई.) नव्य-न्याय का प्रणेता हैं। उन्होंने 'तत्त्वचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसकी अनेक टीकाएँ हैं। न्याय के बाद के ग्रन्थ वैशेषिक जिसमें सात पदार्थ स्वीकार किए गए हैं, को मानते हुए वे न्याय और वैशेषिक को मिलाकर एक नया तन्त्र चलाते हैं। संयुक्त न्याय-वैशेषिक के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ वरदराज (1250 ई.) की 'तार्किक-रक्षा', केशवमिश्र (1300 ई.) की 'तर्कभाषा', विश्वनाथ

(1700 ई.) का 'भाषापरिच्छेद' एवं 'सिद्धान्तमुक्तावली', और अन्नम्भट्ट (1700 ई.) का 'तर्कसंग्रह' है।

न्याय में सोलह पदार्थों की यथार्थ विवेचना की गई है। ये हैं–1. प्रमाण, 2. प्रमेय, 3. संशय, 4. प्रयोजन, 5. दृष्टान्त, 6. सिद्धान्त, 7. अवयव, 8. तर्क, 9. निर्णय, 10. वाद, 11. जल्प, 12. वितण्डा, 13. हेत्वाभास, 14. छल, 15. जाति और 16. निग्रहस्थान।

वस्तुतः न्याय-दर्शन में उक्त षोडश पदार्थों के यथार्थ ज्ञान के द्वारा निःश्रेयस् का अभिगम मानव-जीवन का परम लक्ष्य मानते हुए यही कहा गया है कि दीपक के प्रकाश से जिस प्रकार वस्तुओं का ज्ञान होता है, उसी प्रकार ज्ञान के प्रकाश से पदार्थों के वास्तविक रूप का बोध होता है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं का सर्वमान्य सिद्धान्त स्वीकार करते हुए भी शुद्ध ज्ञान-प्राप्ति के साधनों की यथार्थतः मीमांसा न्यास-दर्शन में ही की गई है। न्याय-दर्शन-द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों व हेत्वाभासों के अत्यन्त प्रामाणिक विवरण का उपयोग अन्य दर्शन में भी पर्याप्त मात्रा में किया गया है। साथ ही इस दर्शन में आत्मा का भी सुन्दर विवेचन किया गया है। इसमें आत्मा को शरीर, मन, बुद्धि से पृथक् एक स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध किया गया है। ध्यान-धारणादि उपायों के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करना तथा चित्त को सुख-दुःख से विरहित साम्यावस्था को प्राप्त करना ही इसका परम लक्ष्य है।

सांख्य-दर्शन

'सांख्य' नाम 'संख्या' शब्द से सिद्ध होता है। इसका यह नाम तत्त्वों की संख्या बतलाने के कारण पड़ा। 'संख्या' शब्द का अर्थ सम्यक् ज्ञान (सं-सम्यक् + ख्या-ज्ञान) भी हो सकता है। इससे भी 'सांख्य' नाम व्युत्पन्न हो सकता है और तब इस नाम की सार्थकता होगी। सांख्य का लक्ष्य प्रकृति और उसके विकारों–शरीर, इन्द्रियों, बुद्धि और अहंकार–से पुरुष का विवेक कराना है, जिससे सब दुःखों का आत्यन्तिक उच्छेद हो जाता है।

सांख्य-दर्शन के आदि प्रणेता कपिल थे। कहा जाता है कि कपिल ने 'सांख्यप्रवचनसूत्र' और 'तत्त्वसमास' नामक दो ग्रन्थ लिखे। ईश्वरकृष्ण (200 ई.) की 'सांख्यकारिका' सांख्य-दर्शन के उपलब्ध ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। ईश्वरकृष्ण ने स्वयं को आसुरि के शिष्य पंचशिख का शिष्य कहा है। आसुरि सांख्य-दर्शन के आदिप्रणेता कपिल का शिष्य था। आसुरि और पंचशिख ने 'षष्ठितंत्र' की रचना कर सांख्यतंत्र को व्यापक बनाया। गौड़पाद ने 'सांख्यकारिका' पर एक भाष्य लिखा। वाचस्पति मिश्र (900 ई.) ने 'सांख्यकारिका' पर प्रसिद्ध 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' नामक टीका लिखी, जो कि सांख्य-दर्शन का सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। आचार्य माठा की 'माठर-वृत्ति' और गौड़पाद की 'युक्ति दीपिका' में 'सांख्यकारिका' की व्याख्या है। नारायणतीर्थ ने गौड़पाद के भाष्य पर 'सांख्यचन्द्रिका' नामक टीका लिखी।

'सांख्यप्रवचनसूत्र' शायद चौदहवीं शताब्दी में लिखा गया था। 'सर्वदर्शन-संग्रह' के रचयिता माधव (1400 ई.) ने इस सूत्र-ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं किया और 'सर्वदर्शनसंग्रह' का 'सांख्य-दर्शन' नामक अध्याय 'सांख्यकारिका' के आधार पर लिखा। अनिरुद्ध (1500 ई.) ने 'सांख्यप्रवचनसूत्र' पर 'सांख्यसूत्रवृत्ति' नामक टीका लिखी। विज्ञानभिखु (1600 ई.) ने उस पर 'सांख्यप्रवचनभाष्य' लिखा, जिसमें ईश्वरवाद का समर्थन किया गया है। विज्ञानभिखु का भाष्य इतना प्रामाणिक नहीं है, जितना कि वाचस्पति मिश्र की 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' है। फिर भी विज्ञानभिखु और वाचस्पति मिश्र सांख्य-दर्शन के दो बड़े आचार्य माने जाते हैं। विज्ञानभिखु ने 'सांख्यसार' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा। वेदान्ती महादेव (1700 ई.) ने 'सांख्यप्रवचनसूत्र' पर 'सांख्यसूत्रवृत्तिसार' नाम से एक टीका लिखी। 'तत्त्वसमास' में तत्त्वों का वर्णन है। माधव ने 'सर्वदर्शनसंग्रह' में इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। इससे ज्ञात होता है कि इसकी रचना बाद में हुई। यह सांख्य-दर्शन की प्रकरण-सूची है। 'षष्टितन्त्र' सांख्य-योग का ग्रन्थ है, निरीश्वरवादी सांख्य का नहीं।

सांख्य-दर्शन प्रकृति और पुरुष का पारमार्थिक भेद मानता है। सांख्य की धारणा यह है कि जड़-द्रव्य, प्राण और मनस् सबका मूल प्रकृति से, जो कि नित्य और विभु है, इसका क्रमिक विकास होता है और इनका प्रयोजन अनन्त पुरुषों को भोग और मोक्ष कराना है। प्रकृति और पुरुष का द्वैत (Dualism) सांख्य-दर्शन का मुख्य सिद्धान्त है। सांख्य का द्वैतवाद वैशेषिक के अनेकत्ववाद (Pluralism) और वेदान्त के अद्वैतवाद का प्रतिपक्षी है। सांख्य न्याय-वैशेषिक और मीमांसा की तरह प्रलय और सृष्टि में विश्वास करता है, जो कि समय-समय पर पुरुषों के प्रयोजन की सिद्धि के लिए हुआ करते हैं। सांख्य प्रकृति के परिणाम अर्थात् विकास को सप्रयोजन मानता है, यद्यपि प्रकृति अचेतन होने से अपने प्रयोजन को नहीं जानती। सांख्य बाह्यर्थवाद (Realist) और द्वैतवादी (Dualist) है। 'महाभारत' का संख्य ईश्वरवादी है, लेकिन 'सांख्य-दर्शन' निरीश्वरवादी है।

सांख्य के अनुसार, प्रकृति सत्त्व, रज तथा तम नामक तीन गुणों की साम्यावस्था है। इन गुणों में वैषम्य होने पर भिन्न-भिन्न पदार्थों का उद्भव होता है। साथ ही प्रकृति से महान्, महान् से अहंकार और अहंकार से पाँच तन्त्रमात्राएँ उत्पन्न होती हैं, जिनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत और एक मन उत्पन्न होकर प्रकृति या उससे निर्मित पदार्थों की संख्या 24 हो जाती है। इसके साथ पुरुष को मिलाने पर उनकी संख्या 25 हो जाती है। इस प्रकार तत्त्वों की संख्या निर्धारित करने के कारण ही यह दर्शन सांख्य कहलाता है।

सांख्य दर्शन सत्कार्यवादी है। सांख्य के सत्कार्यवाद के अनुसार, कार्य अपने सार रूप में कारण में पहले से ही विद्यमान् रहता है और कार्य व कारण में केवल आकार का ही भेद है, अन्यथा तात्त्विक दृष्टि से प्रकृति का विवेक न होने से ही संसार का अस्तित्त्व है। पर दोनों के विवेक की अवस्था में मोक्ष निश्चित है। सांख्य मतानुयायियों ने सत्कार्यवाद के समर्थन में अनेक युक्तियाँ भी दी हैं और 'सांख्यकारिका' में तो स्पष्टतया कहा गया है–

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्य करणात् कारण भावाच्च सत्कार्यम्॥

योग-दर्शन

'योग' शब्द के दो अर्थ हैं-मिलन एवं समाधि। एक ओर तो भगवान् को प्राप्त करना या उनसे मिलना योग है तो दूसरी ओर सम्यक् प्रकार से भगवान् से मिल जाना ही समाधि है। वस्तुतः कामना, वासना, आसक्ति एवं संस्कारों का त्याग करने पर ही भगवान् से मिलन सम्भव है। अतः जीव और ब्रह्म के बीच के स्वजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद को दूर कर उसमें मिल जाना ही योग है।

योग के दो प्रकार हैं। प्रथम में साधक अपनी सत्ता समाप्त करके ईश्वर या ब्रह्म में उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जैसे सागर की तरंगें

अपनी सत्ता समाप्त कर उसी सागर में लीन हो जाती हैं। द्वितीय में साधक अपनी अपनी कुछ स्वतन्त्र सत्ता भी रखता है, पूर्ण रूप से वह ईश्वर में लय नहीं हो जाता। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि योगदर्शन में योग शब्द का कुछ और ही अर्थ ग्रहण किया जाता है। **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'** के अनुसार, चित्तवृत्तियों का निरोध करना ही योग है।

योग-दर्शन का परम ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना है। उसमें ईश्वर-प्राप्ति के लिए मन्त्र योग, हठ योग, लय योग एवं राज योग नामक चार साधनाएँ तथा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा एवं समाधि नामक आठ मार्गों का विवेचन किया गया है। इनमें से प्रथम पाँच बहिरंग और अन्तिम तीन अन्तरंग कहे गए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि योग-दर्शन प्राचीन है और जैनियों व बौद्धों ने भी उसका महत्त्व स्वीकार किया है। नागपन्थ व सिद्ध मत में भी योग को पूर्ण सम्मान प्राप्त है, पर उन्होंने योग के विविध प्रकारों में से अपने अनुकूल प्रकार का ही समर्थन किया है। योग-दर्शन के प्रवर्तक पतंजलि कहे जाते हैं।

योग ने सांख्य के तत्त्वज्ञान को लेकर उसमें ईश्वरवाद को जोड़ दिया है। इसलिए योग 'सेश्वर सांख्य' और सांख्य 'निरीश्वर सांख्य' कहलाता है। योग-दर्शन प्रकृति और उसकी विकृतियों को, अनन्त पुरुषों को तथा ईश्वर को मानता है। प्रकृति जगत् का उपादान-कारण है। ईश्वर जगत् का निमित्त-कारण है। उसने प्रकृति को नहीं बनाया है और न उसने पुरुषों को ही बनाया है। प्रकृति, पुरुष और ईश्वर तीनों अनादि और नित्य हैं। ईश्वर सत्त्व, रजस्, और तमस् की साम्यावस्था को तोड़ता है और प्रकृति का परिणाम शुरू करता है। वह वेदों का कर्ता है। वह प्रत्येक कल्प के आदि में पुरुषों के ज्ञान के लिए वेदों का प्रकाश करता है। वह पुरुषों के अदृष्ट के अनुसार उनका प्रकृति से संयोग और विभाग करता है और इस प्रकार जगत् की सृष्टि और प्रलय करता है। प्रकृति के परिणाम में जो प्रतिबन्धक होते हैं, वह उनको हटाता है। वह पुरुषों के मोक्ष के प्रतिबन्धकों को हटाता है। सांख्य प्रकृति, महत्, अहंकार, मनस्, दस इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्र और पाँच स्थूल भूत-इन पच्चीस तत्त्वों को मानता है। योग इन पच्चीस तत्त्वों के साथ एक छब्बीसवें तत्त्व, ईश्वर, को भी जोड़ देता है। योग-दर्शन थोड़े परिवर्तन के साथ सांख्य-दर्शन को अपनाता है। सांख्य की तरह योग भी बन्ध का कारण प्रकृति और पुरुष का अविवेक तथा मोक्ष का कारण उनका विवेक मानता है। लेकिन वह विवेकख्याति का उपाय योगाभ्यास को मानता है। योगाभ्यास योगदर्शन की अपनी विशेषता है।

पतंजलिकृत 'योगसूत्र' योग-दर्शन का पहला ग्रन्थ है। 'योगसूत्र' पर व्यास (400 ई.) ने 'योगभाष्य' लिखा, जो कि योग-दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक ग्रन्थ है। वाचस्पति (900 ई.) ने इस पर 'तत्त्ववैशारदी' नामक टीका लिखी। विज्ञानभिक्षु (1600 ई.) ने भी उस पर 'योगवार्तिक' नामक टीका लिखी। योग के सिद्धान्तों का प्रामाणिक वर्णन इन्हीं तीन ग्रन्थों में मिलता है। भोजदेव (1000 ई.) ने 'योगसूत्र' पर 'राजमार्तण्ड' नामक टीका लिखी, जो 'भोजवृत्ति' नाम से अधिक प्रसिद्ध है। नागेश (1700 ई.) ने 'योगसूत्र' पर 'छायाव्याख्या' नामक टीका लिखी। नारायणतीर्थ ने इस पर दो टीकाएँ लिखीं, जिनके नाम 'योगसिद्धान्त चन्द्रिका' और 'सूत्रार्थबोधिनी' हैं। रामानन्द सरस्वती ने उस पर 'योगमणिप्रभा' नामक टीका लिखी।

वैशेषिक-दर्शन

वैशेषिक-दर्शन का नाम 'विशेष' को महत्त्व देने के कारण पड़ा। वैशेषिक-दर्शन नित्य द्रव्यों के 'विशेष' को महत्त्व देता है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के परमाणु नित्य हैं। प्रत्येक परमाणु में एक 'विशेष' रहता है, जो उसे अन्य परमाणुओं से अलग करता है। आकाश, दिक्, काल, आत्मा और मनस् भी नित्य द्रव्य हैं। इनमें से प्रत्येक का एक 'विशेष' होता है। यह अनेकतत्त्ववादी दर्शन है। यह भौतिक वस्तुओं की और उनके परमाणुओं की अनेकता पर जोर देता है। आत्मा भी अनेक हैं। वैशेषिक-दर्शन ने ईश्वर को आगे चलकर माना, लेकिन न्याय-दर्शन की तरह यह भी ईश्वर का जगत् और आत्माओं से बहिरंग सम्बन्ध मानता है। यह ईश्वर को परम आत्मा मानता है।

वैशेषिक-दर्शन बाह्यार्थवादी है। यह आत्मा और बाह्य पदार्थों को सत्य मानता है। आत्मा अनेक और नित्य हैं। वैशेषिक को बौद्धों का यह मत मान्य नहीं है कि आत्मा क्षणिक-विज्ञान-सन्तान मात्र है या पाँच स्कन्धों का योग मात्र है। आत्मा नित्य और सुख, दुःख, ज्ञान इत्यादि गुणों से युक्त है। भौतिक वस्तुएँ सत्य हैं। वे आत्मा और उसके विज्ञान से स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं। वे द्रव्यरूप हैं और आगमपायी गुणों से पृथक् हैं। बौद्ध द्रव्य की गुणों से पृथक् सत्ता नहीं मानते। वे द्रव्य को गुणों का संघात मात्र मानते हैं। वे परिवर्तन मात्र को मानते हैं। और परिवर्तनों के पीछे किसी शाश्वत सत्ता को नहीं मानते।

कणाद (300 ई.पू.) वैशेषिक-दर्शन का आदि प्रवर्तक हैं, 'वैशेषिकसूत्र' उन्हीं की रचना है। प्रशस्तपाद (400 ई.) ने वैशेषिक सूत्रों पर एक भाष्य लिखा, जिसका नाम 'पदार्थधर्मसंग्रह' है। श्रीधर (1000 ई.) ने 'पदार्थधर्मसंग्रह' पर 'न्यायकन्दली' नाम की टीका लिखी। उदयन (1000 ई.) ने भी प्रशस्तपाद के गन्थ पर 'किरणावली' नाम की एक टीका लिखी। शंकर मिश्र (1500 ई.) ने वैशेषिक-सूत्र पर 'उपस्कार' नामक टीका लिखी। बाद के ग्रन्थों में वैशेषिक को न्याय-दर्शन के साथ मिला दिया गया है। वे न्याय-वैशेषिक नामक संयुक्त दर्शन के ग्रन्थ हैं। शिवादित्य (1000 ई.) की 'सप्तपदार्थी', केशवमिश्र (1300 ई.) की 'तर्कभाषा', अन्नम्भट्ट (1700 ई.) का 'तर्कसंग्रह', वरदराज (1200 ई.) की 'तार्किकरक्षा', विश्वनाथ (1700 ई.) का 'भाषापरिच्छेद' और इसकी टीका 'सिद्धान्तमुक्तावली' न्याय-वैशेषिक के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। जयनारायण (1700 ई.) ने वैशेषिकसूत्र पर 'कणादसूत्रविवृति' नामक टीका लिखी। वैशेषिक-दर्शन में सात पदार्थ स्वीकृत किए गए हैं–

द्रव्यगुणस्तया कर्म सामान्यं सविशेषकम्।
समवायोऽभावश्वचपदार्था सप्तकीर्त्तितः॥

वैशेषिक-दर्शन में गुणों व कर्मों के आधार को द्रव्य कहा गया और व क्रिया से युक्त द्रव्य को पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक् आत्मा व मन नामक नौ प्रकारों में विभाजित कर उन्हें पुनः सक्रिय द्रव्य तथा निष्क्रिय द्रव्य नामक दो भागों में विभाजित किया गया है। इसी प्रकार वैशेषिक दर्शन में परमाणु को महत्ता प्रदान करते हुए उसे अविभाज्य, सूक्ष्मतम, अवयवहीन और नित्य कहा गया तथा उन्हें विश्व का कारण-स्वरूप समझा गया, क्योंकि इन्हीं के संयोग से वस्तुओं का निर्माण होता है। द्रव्यगुण व कर्म के समान धर्मों के योग का नाम, सामान्य और वस्तुओं के पारस्परिक वैधर्म्य को ज्ञान विशेष कहा गया है। समवाय व विशेष जैसे नित्य पदार्थों का अन्य पदार्थों के साथ सम्बन्ध दिखलाने के लिए इसमें समवाय नामक नित्य सम्बन्ध की सत्ता भी स्वीकार की गई। संक्षेप में इस दर्शन के अनुसार, निष्काम

कर्मों का सम्पादन भी नितान्त आवश्यक है, क्योंकि इसे कर्मों का अनुष्ठान तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति करता हुआ मोक्ष की उपलब्धि में परम्परा या कारण है।

मीमांसा-दर्शन

मीमांसा का मुख्य विषय कर्म-विषयक वैदिक विधियाँ हैं। मीमांसा उन नियमों को निर्धारित करती है, जिनके अनुसार अर्थ करने पर वैदिक विधि-निषेधों के विरोधाभास दूर हो जाते हैं और उनमें एकवाक्यता आ जाती है। वैदिक कर्मकाण्ड के पीछे जो विश्वास छिपे हुए हैं, वे उनका भी दार्शनिक समर्थन मीमांसा करती है। मीमांसा आत्मा, बाह्य जगत् और कर्म के नियम का अस्तित्व मानती है। मीमांसा में अनेक देवताओं का अस्तित्व माना गया है। विश्व की रचना के लिए वह किसी एक ईश्वर की आवश्यकता नहीं मानती। वेद नित्य और स्वत: प्रमाण हैं। वेद अपौरुषेय हैं। न्याय-वैशेषिक वेदों को ईश्वर-कृत मानता है, लेकिन मीमांसा उन्हें अकृतक मानती है। प्रधानत: कर्म का विचार करने के कारण मीमांसा कर्म-मीमांसा भी कहलाती है।

मीमांसा की दो शाखाएँ हैं–पूर्व-मीमांसा एवं उत्तर-मीमांसा। पूर्व-मीमांसा को मीमांसा और वेदान्त को उत्तर-मीमांसा कहा जाता है। पूर्व-मीमांसा कर्म का विचार करती है और उत्तर-मीमांसा ज्ञान का विचार करती है। कर्म अर्थात् यज्ञ-याग करना ही धर्म है और उसके अनुष्ठान से तत्त्व-ज्ञान होता है। इस प्रकार पूर्व-मीमांसा तार्किक क्रम की दृष्टि से उत्तर-मीमांसा से पहले आती है।

मीमांसा के दो सम्प्रदाय हैं, जिनमें से एक का प्रणेता कुमारिल भट्ट हैं और दूसरे का प्रभाकर मिश्र। उन्हें क्रमश: भाट्ट-मत और प्रभाकर-मत कहते हैं। उनमें कई दार्शनिक प्रश्नों पर मतभेद है। मुख्य दार्शनिक प्रश्नों पर विचार करते समय उनके भेदों का पता चलता है।

जैमिनि (400 ई.पू.) मीमांसा-दर्शन के आदि प्रणेता थे। उन्होंने 'मीमांसासूत्र' लिखा। शबर (100 ई.पू.) ने 'मीमांसासूत्र' पर एक भाष्य लिखा, जो 'शाबरभाष्य' कहलाता है। कुमारिल भट्ट (700 ई.) ने 'शाबरभाष्य' पर तीन खण्डों में एक स्वतन्त्र टीका-ग्रन्थ लिखा, जिनके नाम 'श्लोकवार्तिक', 'तन्त्रवार्तिक' और 'टुप्टीका' हैं। 'श्लोकवार्तिक' 'शाबरभाष्य' के पहले अध्याय के पहले पाद 'तर्कपाद' पर लिखा गया है और इसका बहुत बड़ा दार्शनिक महत्त्व है। कुमारिल ब्राह्मणवाद और वैदिक कर्म-काण्ड का जबर्दस्त समर्थक थे। शंकर ने कुमारिल भट्ट के कर्मवाद का खण्डन करके ज्ञानवाद का समर्थन किया। पार्थसारथि मिश्र (900 ई.) ने 'श्लोकवार्तिक' पर 'न्यायरत्नाकर' नामक टीका लिखी। उसने कुमारिल भट्ट का अनुसरण करते हुए मीमांसा पर 'शास्त्रदीपिका' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा। यह ग्रन्थ भाट्ट-मत का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है। रामकृष्ण भट्ट ने 'शास्त्रदीपिका' के तर्कपाद पर 'युक्तिस्नेहप्रपूरणी-सिद्धान्त-चन्द्रिका' नामक टीका लिखी। प्रभाकर (700 ई.) ने 'शाबरभाष्य' के ऊपर 'बृहती' नामक टीका लिखी। शालिकनाथ मिश्र ने 'बृहती' के ऊपर 'ऋजुविमला' नामक टीका लिखी। इसके अतिरिक्त उसने प्रभाकर-मत के अनुसार 'प्रकरणपंचिका' के नाम से एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा। यह प्रभाकर-मत का लोकप्रिय ग्रन्थ है। रामानुज (800) का 'तन्त्ररहस्य' प्रभाकर-मत का एक अन्य ग्रन्थ है। परम्परा के अनुसार, प्रभाकर कुमारिल का शिष्य था। प्रभाकर के मत को प्राय: 'गुरु-मत' भी कहते हैं। प्रभाकर ने अपनी टीका में शबर के मत का अनुसरण किया है। लेकिन कुमारिल ने शबर के कुछ मतों का खण्डन किया है। कुछ विद्वानों का कथन है कि प्रभाकर कुमारिल का पूर्ववर्ती था।

उपर्युक्त दो सम्प्रदायों के अतिरिक्त मीमांसा का एक तीसरा सम्प्रदाय भी माना जाता है, जिसके प्रणेता मुरारि मिश्र थे। इस सम्प्रदाय के ग्रन्थ शायद नष्ट हो गए हैं।

उत्तरमीमांसा या वेदान्त-दर्शन

वेदान्त-दर्शन को भारतीय अध्यात्म-शास्त्र का मुकुटमणि कहा जाता है। वेदान्त-शब्द का अर्थ है, वेद का अंत यानी उपनिषद्। उपनिषदों को वेदों के सिद्धान्त के प्रतिपादक होने के कारण 'वेदान्त' (वेद का अन्त सिद्धान्त) शब्द से अभिहित किया गया है। उपनिषदों की संख्या 108 हैं और उनके सिद्धान्तों में भी आपातत: विरोध प्रतीयमान होता है। इन विरोधों के परिहार के लिए महर्षि बादरायण (वेद व्यास) ने जिन सूत्रों की रचना की, उन्हें ब्रह्मसूत्र के नाम से पुकारते हैं। ब्रह्मसूत्र पाणिनि से भी प्राचीन माने जाते हैं और उनका निर्माण-काल विक्रम पूर्व षष्ठ शतक के लगभग माना जाता है। 'ब्रह्मसूत्र' की व्याख्या करके कालान्तर में वेदान्त के कुछ नवीन सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनके कुछ प्रसिद्ध आचार्य, उनके भाष्य और मत इस प्रकार हैं–

आचार्य	समय	भाष्य	मत
शंकर	(700 ई.)	शारीरिक भाष्य	अद्वैत
भास्कर	(1000 ई.)	भास्कर भाष्य	भेदाभेद
रामानुज	(1140 ई.)	श्रीभाष्य	विशिष्टाद्वैत
मध्व	(1238 ई.)	पूर्ण प्रज्ञ	द्वैत
निम्बार्क	(1250 ई.)	वेदान्त पारिजात	द्वैताद्वैत
श्रीकंठ	(1270 ई.)	शैवभाष्य	शैवविशिष्टाद्वैत
श्रीपति	(1400 ई.)	श्रीकर भाष्य	वीर शैवविशिष्टाद्वैत
वल्लभ	(1500 ई.)	अणुभाष्य	शुद्धाद्वैत
विज्ञानभिक्षु	(1600 ई.)	विज्ञानामृत	अविभागाद्वैत
बलदेव	(1725 ई.)	गोविन्द भाष्य	अचिंत्यभेदाभेद

यद्यपि मूल 'ब्रह्मसूत्र' में लगभग 500 सूत्र हैं, इसमें कुछ सूत्र इतने सूक्ष्म हैं कि बिना किसी भाष्य या व्याख्या के उनका अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता है। अत: आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि के अनुकूल इन सूत्रों की विस्तृत व्याख्याएँ लिखी हैं। पर इन सभी व्याख्याकारों में सर्वाधिक मत वैभिन्नता का विषय है जीव और ब्रह्म या ईश्वर का सम्बन्ध। इसलिए वेदान्त का साहित्य अत्यधिक विशाल और भव्य है और अद्वैतमत का प्रवर्तक आचार्य शंकर से लेकर अब तक यह विचारधारा परिपुष्ट ही होती रही है।

अभ्यास प्रश्न

1. चार्वाक-दर्शनम् अस्ति–
   (A) आस्तिक: (B) नास्तिक:
   (C) कर्मवादी (D) जन्मान्तरवादी
2. चार्वाक-दर्शनस्य आद्युपदेष्टा क:?
   (A) वृहस्पति: (B) चार्वाक:
   (C) लोकायत: (D) जयन्त:
3. जैन-दर्शनस्य संस्थापक: अस्ति–
   (A) ऋषभदेव: (B) महावीर:
   (C) पार्श्वनाथ: (D) नागार्जुन: